International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(1): 438-440

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(1): 438-440
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 28-10-2020
Accepted: 13-11-2020

डॉ॰ दीप लता
निर्देशक, सहायक आचाय, संस्कृत – विभाग, हि॰ प्र॰ विश्वविद्यालय समरहिल– शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

ज्योति ठाकुर
पीएच–डी० शोधच्छात्रा, संस्कृत – विभाग, हि॰ प्र॰ विश्वविद्यालय, समरहिल–शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ॰ दीप लता
निर्देशक, सहायक आचाय, संस्कृत – विभाग, हि॰ प्र॰ विश्वविद्यालय समरहिल– शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

वीरवर्धमानचरितम् में वैराग्य का स्वरूप

डॉ॰ दीप लता एवं ज्योति ठाकुर

प्रस्तावना

राग जिसका हट गया हो उसका भाव ही वैराग्य है। राग चाहे अपने शरीर में हो या अन्य शरीर स्त्री–पुरूष, बान्धव में हो या जीव जन्तु आदि में हो, इसी प्रकार धन–संपत्ति, भूमि, घर तथा राज्यादि भोग ऐश्वर्यो से हो, इस जन्म में जिनसे सुख प्राप्त हो रहा हो या सुख प्राप्ति की कामना हो, यहाँ तक की परलोक में या स्वर्ग में सुख मिलने का तृष्णा होना, ये सब कुछ राग के ही क्षेत्र में आते हैं। इन समस्त विष्यों से मिलने वाले सुखों के प्रति तृष्णारहित होना ही वैराग्य है। तृष्णा, आशा, लोभ, कामना आदि एक ही प्रकार के भावों को उत्पन्न करने वाले हैं, इन सबके कारण मन चंचल हो जाता है तथा पदार्थों में आसक्त होकर भटकता है। राग से प्राप्त मूल सुख की आशारूपी नदी को विवेक रूपी सूर्य से सुखा देना ही वैराग्य का कार्य है जिसके परिणामस्वरूप मन वश में आ जाता है।

वि उपसर्ग रञ्ज धातु से घञ् प्रत्यय करने पर विराग शब्द बनता है, जिसका अर्थ है आसक्ति या रागशून्य। विराग पद से ष्यञ् प्रत्यय होने पर 'वैराग्य' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है सांसारिक पदार्थों में अरूचि अथवा उनसे विरक्ति।[2]

विषयवासनाओं से रहित, इहलौकिक और पारलौकिक भोगो से पूर्णतया अनासक्ति[1] होना ही वैराग्य कहलाता है। सांसारिक वासनाओं तथा इच्छाओं का अभाव होना, सांसारिक बन्धनों से उदासीनता या विरक्ति होना वैराग्य कहा गया है।

महावीर जैन धर्म के चौबीसवें (२४वें) तीर्थंकर है। भगवान महावीर ने संसार को सत्य, अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। तीर्थंकर महावीर स्वामी ने अहिंसा को सबसे उच्चतम् गुण माना है। महावीर स्वामी को अपने जीवन में सुख के समस्त साधन (शुभ लक्षण, रूप सम्पदा, विवेकादि गुण) प्राप्त हुए थें। महावीर स्वामी की आयु जब 30 वर्ष की हुई तब उनका हृदय काम राग से शून्य हो गया तथा सांसारिक विषयों के प्रति भी अनासक्त रहने लगा। अधिकांश समय वह ध्यान में ही मग्न रहने लगे। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हो जाने पर एक दिन स्वयं ही भगवान महावीर को जाति स्मरण हो जाने से वैराग्य हो गया। वैराग्य प्राप्ति के पश्चात् महावीर स्वामी ने तपस्या की और ज्ञान प्राप्त किया। महावीर स्वामी के अनुसार –

"यतो मोहेन जायते रागद्वेषो हि दुर्धरौ
ताभ्यां घोरतरं पापं पापेन दुर्गतौ चिरम्।
परिभ्रमणमत्यर्थं तस्माद्वाचा भगोचरम
लभन्ते प्राविनो दुःखं पराधीनाः सुखच्युताः ।।"[2]

अर्थात् मोह के कारण राग–द्वेष होते है, राग–द्वेष के कारण पाप होते है, पाप के कारण दुर्गति होती है, दुर्गति होने पर प्राणी को सुख की प्राप्ति न होकर अनेक दुःखो को भोगना पड़ता है।

अतः ज्ञानी मनुष्यों को मोहरूपी शत्रु का नाश वैराग्यरूपी खड्ग से करना चाहिए, क्योंकि मोह ही समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाला है।

"यत्किंचिद् दृश्यते वस्तु सुन्दरं भुवनत्रये ।
कर्मोभ्दवं हितत्सर्वं नश्येत्कालेन नान्यथा।। [1]

अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी वस्तु दिखाई देती है, जो वस्तु सुन्दर प्रतीत होती है, वह सब कर्मो के द्वारा ही उत्पन्न होता है और समय के साथ–साथ वह नष्ट हो जाता है।

जिस प्रकार यदि जहाज में छिद्र हो जाए तो वह धीरे–धीरे समुद्र में डूब जाता है उसी प्रकार जब मनुष्य कर्मों में बन्ध जाता है तो इस अनन्त संसार में डूब जाता है।

इस संसार में मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त कर यम के पास जाता है, मनुष्य अकेला ही अपने कर्मानुसार दुःखो को भोगता है। रोगादि से ग्रस्त होने पर जब मनुष्य वेदना से पीड़ित होता है तब बन्धुजन देखते हुए भी उसकी पीड़ा का अंश मात्र भी नहीं ले पाते। अत्यन्त पीड़ा के कारण प्राणी विलाप करता है और अंत में यम द्वारा ले जाये जा रहें प्राणी की कोई रक्षा नहीं कर पाता। वह प्राणी अपने परिवार की वृद्धि के लिए अनेक प्रकार के निन्ध, हिंसादि कर्मों को करता है जिस कारण संसार में रहते हुए अनेक दुखो को भोगता है तथा मृत्यु के पश्चात् भी नरकादि दुर्गतियों के महादुःखों को भोगता है उसके साथ कोई अन्य उन दुःखो को नहीं भोगता। [2]

''एको हत्वा स्वकर्मारींस्तपोरतत्रयादिभि :।
अनन्त सुखसंपन्नं याति मोक्षं भवातिगः।। [3]

अर्थात् अकेला ही वह प्राणी और रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक चरित्र) द्वारा अपने कर्म शत्रुओं का नाश करके अनन्त सुख से सम्पन्न मोक्ष को प्राप्त करता है।

श्रीरामचन्द्र जी जब अपनी बाल्यावस्था में थे तब उन्हें तीर्थयात्रा पर जाने की इच्छा हुई। उसके बाद अपने पिता से आज्ञा प्राप्त कर श्रीरामचन्द्र जी अपने भाइयों, महर्षि वसिष्ठ द्वारा प्रेषित शास्त्र को जानने वाले ब्राह्मणों, कतिपय अपने प्रिय श्रेष्ठ राजकुमारों के साथ तीर्थयात्रा के लिए निकले। अनेक तीर्थस्थलों की यात्रा करने के पश्चात् जब श्रीराम घर को वापस आए तब उन्हें इस संसार की वास्तविकता का ज्ञान हुआ कि यह समस्त संसार मिथ्या है।[1] अतः उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। तीर्थयात्रा करने के पश्चात् श्रीरामचन्द्र जी जिस प्रकार शरद् ऋतु में तालाब प्रतिदिन सूखता जाता है उसी प्रकार वे भी कृश होने लगे। श्री राम चिन्तन में ग्रस्त, दुःखी और उदास रहने लगे। श्रीरामचन्द्र जी की विरागावस्था का वर्णन करते हुए सेवक राजा दशरथ से कहता है कि –

''एक एव वसन् देशे जनशून्ये जनेश्वर
न हसत्येकया बुद्धया न गायति न रोदिति ।।
बद्धपद्मासनः शून्यमना वामकरस्थले
कपोलतलमाधाय केवलं परितिष्ठति ।।
नाऽभिमानमुपादत्ते न च वाञ्छति राजताम्

अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी अकेले ही रहते है, वे न तो हँसते है, न ही रोते है और न ही किसी प्रकार की गति करते हैं। वे अपने बांये हाथ में कपोल लिए हुए पद्मासन में बैठकर किसी ऊँची वस्तु का घ्यान लगाये बैठे रहते हैं। इष्ट पदार्थों के मिलने पर वे न तो प्रसन्न होते हैं और न ही अनिष्ट पदार्थों के मिलने पर दुःखी होते है, उनके अन्दर अभिमान पूर्णतया समाप्त हो गया है और उन्हें राज्य की भी ईच्छा नहीं रही अर्थात उनकी किसी भी वस्तु में आसक्ति नहीं रही। श्रीरामचन्द्र जी की वैराग्य प्राप्ति के पश्चात् ऐसी स्थिति हो गई है कि उन्हें अपने प्राणों से भी कोई मोह नहीं रहा।

वैराग्य होने के अनेक कारण हो सकते हैं। कभी प्राणी में भोगों की अनित्यता का ज्ञान होने से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, कभी वह शरीर की नश्वरता को जानकर वैरागी बन जाता है। कई मनुष्य ऐसे हुए जिन्होंने तीर्थयात्रा के पश्चात् वैराग्य को धारण किया। कुछ विद्वानों ने संसार को अनित्य, नश्वर जानवर एकमात्र ईश्वर को ही सत् समझा और वैरागी बन गए। कुछ मनुष्यों ने अपने गुरूओं तथा पिता से उपदेश लेने के पश्चात वैराग्य को प्राप्त किया।

मैत्रेय्युपनिषद् में बृहद्रथ नाम के राजा को शरीर की नश्वरता का ज्ञान हुआ, इस प्रकार का ज्ञान होने से उन्होंने वैराग्य को धारण किया अतः वह अपने बड़े पुत्र को राज्य देकर वन को चला गया, वहाँ उसने उग्र तपस्या की। [1]

संसार की अनित्यता के विषय में विचार करते हुए महावीर स्वामी कहते है –

''आयुर्नित्यं यमाक्रान्तं जरास्यस्थं च यौवनम्।
रोगोरगबिलं कायं खसुखं क्षणभङ्गुरम् ।। [2]

अर्थात् प्राणियों की आयु अनित्य है, हर समय यह आयु यमराज द्वारा आक्रान्त की जा रही है, युवावस्था दिन प्रतिदिन वृद्धावस्था के मुख में प्रवेश कर रही है, मनुष्य का यह शरीर रोगरूपी सर्पों के बिल के समान है और यह इन्द्रियों से प्राप्त सुख कुछ क्षणों के लिए ही है। इस संसार की समस्त वस्तुऐं कभी न कभी नष्ट हो जाती है। मनुष्य के गर्भकाल से लेकर इस सम्पूर्ण संसार का क्षय करने वाला जो समराज है वह हर क्षण प्राणियों का अपने समीप ले जा रहा है।

वह कुटुम्ब जिसके लिए प्राणी अनेक प्रकार के ऐसे निन्ध कर्मों को करता है जो कर्म उसे नरकादि दुर्गतियों में ले जाते हैं, वह कुटुम्ब भी उस यमराज द्वारा ही ग्रसित है। इस समस्त चराचर जगत में इच्छाओं से युक्त जितने भी भोग के साधन पदार्थ है, वे सब अस्थिर है अर्थात क्षण भर के लिय है। अतः उन भोगों से किसी भी प्रकार के सुख की ईच्छा नहीं की जा सकतीए क्योंकि ऐसे विषय राग–द्वेष को बढ़ाने वाले तथा अनेक बौद्ध दर्शन में भी कहा गया है कि –

''सर्वं क्षणिकं क्षणिकं, दुखं दुखं, स्वलक्षणं स्वलक्षणं,
शून्यंशून्यमिति भावनाचतुष्टयमुदिष्टं द्रष्टव्यम् ।'' [2]

अर्थात् सब कुछ क्षणिक है, क्षणिक है, सब कुछ दुःखरूप ही है अर्थात दुःख है, सब कुछ शून्यरूप है अर्थात सब कुछ शून्य है।

हीनयान में सभी वस्तुओं की क्षणभंगुर एवं अनित्य माना गया है। साधारणतः नित्य दिखाई देने वाली वस्तुएँ नित्य नहीं है, असद् है। जितनी भी वस्तुएँ इस संसार में है उनकी उत्पत्ति किसी न किसी कारण के अनुसार ही हुई है।

मनुष्य शरीर की निन्दा करते हुए कहा गया है कि –

''क्षुत्पिपासाजरारोगाग्नयो यत्र ज्वलन्त्यहो।
तत्रकायकुटीरे किं निवासः शस्यते सताम् ।।'' [1]

अर्थात् जिस शरीर में भूख–प्यास, बुढ़ापा अनेक प्रकार के रोग आदि अग्नियाँ सदैव जलती रही है, उस शरीर रूपी घर में किया गया सज्जनों द्वारा निवास कभी भी प्रशंसनीय नहीं माना जाता।

यह शरीर एक बिल के समान है जिसमें राग, देश, ईर्श्या मोह और कारूपी सर्प सदैव निवास करते है। यह पापी शरीर स्वयं तो दूषित है ही तथा आपने आश्रय में आने वाले द्रव्यों को भी दूषित करता है। इस शरीर में चर्म, हड्डी, मांस, रक्त आदि के अलावा कोई रम्य वस्तु दिखाई नहीं देती। अच्छे खान–पान द्वारा पोषित किया गया शरीर तथा तपश्चरण आदि से सुखाया गया शरीर अन्त में अग्नि में जलकर राख का ढेर हो जाते है।

अतः तप द्वारा सुखाया गया शरीर ही उत्तम है। क्योंकि खान पान द्वारा पोषित किया गया शरीर इस जन्म में रोंगादि को और परभव में दुर्गतियों को देता है, किन्तु तप के द्वारा सुखाया गया शरीर परभव में स्वर्ग और मुक्ति के उत्तम सुखों को देता है। [2]

कठोपनिषद् में इस संसार की तुलना अश्वत्थ वृक्ष से करते हुए कहा गया कि –

''ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः
तदेव शुकं तद् ब्रह्म तदेवामृतभुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्।।'' [1]

अर्थात् यह संसाररूपी अश्वत्थ वृक्ष बहुत विलक्षण है। इसकी जड़े ऊपर की ओर तथा शाखाऐं नीचे की ओर है। वही मूल है, शुद्ध ज्योतिस्वरूप, वही ब्रह्म है और वही सुधा है। सब उसी पर निर्भर है उससे ऊपर और दूसरा कोई नहीं है। निश्चित रूप से इन समस्त गुणों से युक्त वह ब्रह्म ही है।

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि –

''यथा यथा विपर्येति लोकतनामसारवत।
तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः।।

अर्थात् जैसे जैसे इस सम्पूर्ण संसार की नीरसता और मिथ्यारूपता का ज्ञान हो जाता है, वैसे वैसे इसके विषय में वैराग्य भी हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। [2]

संधर्व सूची

1. शब्दकल्पद्रुम चतुर्थ भाग पृष्ठ 419
2. वाचस्पत्यम् पृष्ठ 4976
3. शब्दार्थकौस्तुभ पृष्ठ 1112
4. शब्दस्तोममहानिधि, पृष्ठ 414
5. वीरवर्धमानचरितम्
6. वीरवर्धमानचरितम् एकादशोऽधिकार, पृष्ठ 105
7. एको यः कुरूते पापं स्वस्थ दुर्गतिकारणम। निन्द्यैः सावद्यहिंसायैः स्वपरीवारवृद्धये ।।
   तत्फलेन स एवात्र प्राप्य श्वभ्रादिदुर्गतीः । भुनक्ति परमं दुःखं तेनामा न जनो अपरः ।। वीरवर्धमानचरितम एकादशोऽधिकार, पृष्ठ 105
8. वीरवर्धमानचरितम एकादशोऽधिकार, पृष्ठ 105
9. जगद्भ्रमोऽयं दृश्योऽपि नास्त्येवेत्यनुभूसते। योगवासिष्ठ 1/3/5
10. योगवासिष्ठ 1/3/27
11. ऊँ बृहद्रथो वै नाम राजा राज्ये ज्येष्ठं पुत्रं निधापयित्वेदमशाश्वत मन्यमानः शरीरं वैराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम । उपनिषत्संग्रह : पृष्ठ 236
12. वीरवर्धमानचरितम एकादशोऽधिकार, पृष्ठ 102
13. सर्वदर्शनसंग्रह पृष्ठ 36
14. वीरवर्धमानचरितम एकादशोऽधिकार, पृष्ठ 106
15. पोषितं शोषितं चैतद्भस्मराशिर्भविष्यति। यद्यवश्यं वपुस्तर्हि तपसे शोषितंवरम्।।
   यतोऽयं पोषितः कायो दत्ते रोगाद्यदुर्गतीः । शोषितस्तपसामुत्र दाता स्वर्मुक्तिसत्सुखम्।।
   वीरवर्धमानचरितम एकादशोऽधिकार, पृष्ठ 106
16. कठोपनिषद् द्वितीय अध्याय।
17. महाभारत शान्तिपर्व 174/4